मंथन कमॉक 125 ''न्यायपालिका की स्वतंत्रता और सीमाएं''

दुनियां की वर्तमान सामाजिक व्यवस्था आदर्श सामाजिक व्यवस्था से बहुत अलग है। आदर्श व्यवस्था में समाज सबसे उपर होता है और राष्ट्र या धर्म सहायक। वर्तमान में समाज से भी उपर राष्ट्र और धर्म बन गये है। यह दूरी बढती जा रही है। आदर्श व्यवस्था में व्यक्ति की स्वतंत्रता सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता प्राकृतिक रूप से समान होती है। इसकी सीमा कोई अन्य नहीं बना सकता। इस स्वतंत्रता की सुरक्षा ही न्याय है। न्याय देना सम्पूर्ण मानव समाज का दायित्व है। वर्तमान स्थिति में राज्य न्याय को परिभाषित करने लगा है तथा राज्य ही व्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमाएं भी बनाने लगा है। आदर्श व्यवस्था में पूरी दुनियां का एक संविधान होना चाहिये जिसमें दुनियां के प्रत्येक व्यक्ति की समान भूमिका हो। प्रत्येक व्यक्ति को सर्वप्रथम विश्व नागरिक होना चाहिये। वर्तमान समय में दुनियां का ऐसा कोई संविधान नहीं बना है ना ही प्रत्येक व्यक्ति को विश्व नागरिकता प्राप्त है। वर्तमान समय में राष्ट्र संप्रभुता सम्पन्न इकाई है और विश्व व्यवस्था राष्ट्रो की सहमति असहमति पर निर्भर करती है।

भारत भी वर्तमान विकृत समाज व्यवस्था के अंतर्गत एक संप्रभुता सम्पन्न राष्ट्र है जिसे अपना संविधान बनाने एवं कियान्वित करने की अनियंत्रित स्वतंत्रता है। आवश्यक है कि हम न्यायपालिका की स्वतंत्रता और सीमाओं की चर्चा भारत की वर्तमान व्यवस्था तक सीमित रहकर करें। भारत में लोकतंत्र है जिसका अर्थ होता है न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका का समन्वित स्वरूप। संविधान के अनुसार तीनों के कार्य इस प्रकार अलग–अलग बंटे हुये हैं कि सबके अधिकार तथा हस्तक्षेप बराबर हों। विधायिका न्याय को परिभाषित कर सकती है, न्यायपालिका उक्त परिभाषा के अनुसार न्याय की समीक्षा करके न्याय अन्याय को अलग अलग करती है और कार्यपालिका न्यायिक समीक्षा के आधार पर कियान्वयन करती है। प्रत्येक व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी ही न्याय है और यह प्राकृतिक अधिकार सिर्फ स्वतंत्रता तक सीमित होता है इसलिये न्यायपालिका को एक विशेषाधिकार दिया गया है कि यदि विधायिका द्वारा किया गया कोई संविधान संशोधन व्यक्ति की प्राकृतिक स्वतंत्रता के विरूद्ध हो तो न्यायपालिका उक्त संविधान संशोधन को अमान्य घोषित कर सकती है। अन्य किसी मामले में न्यायपालिका किसी संविधान संशोधन की समीक्षा नहीं कर सकती।

जिस तरह व्यक्ति को प्रकृति प्रदत्त स्वतंत्रता प्राप्त है उसी तरह प्रत्येक व्यक्ति को सहजीवन अपनाने की बाध्यता भी है। इस बाध्यता को कियान्वित कराना विधायिका का काम है और कार्यपालिका तदनुसार कियान्वित करती है। इसका अर्थ हुआ कि यदि कोई व्यक्ति अपनी सीमाएं तोडता है तो विधायिका और कार्यपालिका मिलकर उसे दंडित कर सकते है जिससे वह अपनी सीमाएं ना तोड सके। विधायिका इस मामले में संविधान संशोधन करती है और न्यायपालिका उसकी तब तक समीक्षा नहीं कर सकती जब तक वह संशोधन व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के विरूद्ध ना हो। इस प्रकार संविधान के अनुसार न्यायपालिका की सीमाएं भी निश्चित हैं। भारत में लोकतंत्र है और इसलिये व्यक्ति से राज्य तक के बीच में प्रशासन की विभिन्न सीढियां बनी हुयी हैं। इसका अर्थ हुआ कि न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका संविधान के अनुसार कार्य करने के लिये बाध्य हैं। विधायिका भी संविधान के अनुसार ही कानून बना सकती है और कार्यपालिका कानून के अनुसार ही कार्य कर सकती है, कानून से हटकर नहीं। कार्यपालिका का कोई भी अधिकार प्राप्त व्यक्ति कानून से हटकर कोई आदेश नहीं दे सकता और कोई व्यक्ति बिना आदेश के कार्य नहीं कर सकता। यदि विधायिका या कार्यपालिका की कोई भी इकाई अपनी सीमाओं को तोडती है तो न्यायपालिका उसकी समीक्षा करके उसे अपनी सीमा में रहने के लिये बाध्य कर सकती है। इसका अर्थ हुआ कि संविधान समीक्षा के साथ–साथ संविधान के द्वारा न्यायपालिका को यह दायित्व भी दिया गया है कि संविधान के विरूद्ध बनने वाले किसी कानून, कानून के विरूद्ध पारित किसी प्रकार के आदेश तथा आदेश के विरूद्ध की जाने वाली किसी किया को अलोकतांत्रिक घोषित करके उस किया को रोक सके। न्यायपालिका ऐसे आदेश को गैरकानूनी घोषित कर सकती है किन्तु कोई नया आदेश नहीं दे सकती। कोई नया आदेश विधायिका ही दे सकती है।

जब भारत का संविधान बना तो संविधान भारतीय चिंतन मनन से दूर हटकर विदेशों की नकल मात्र था इसलिये उसमें कुछ कमजोरियां रह गयी । इन कमजोरियों का लाभ उठाकर न्यायपालिका और विधायिका ने समय समय पर अपनी मनमानी करने की कोशिश की। यह कोशिश सर्वप्रथम विधायिका के द्वारा शुरू की गयी जब संविधान बनने के दो वर्ष बाद ही पंडित नेहरू के नेतृत्व में संविधान संशोधन करके न्यायपालिका की शक्ति को कमजोर कर दिया गया। उसके बाद संविधान संशोधन करके कार्यपालिका के प्रमुख राष्ट्रपति के भी अधिकार सीमित कर दिये गये। सन् 1973 में न्यायपालिका ने असंवैधानिक तरीके से स्वयं को विधायिका के समकक्ष स्थापित किया। 1975 में इंदिरा गांधी ने फिर से तानाशाही थोपने का प्रयास किया जो 1977 में विफल हो गया। लगभग दस वर्ष बाद न्यायपालिका ने असंवैधानिक तरीके से विधायिका को और कमजोर करना शुरू किया जनहित याचिका सुनना या कॉलेजियम सिस्टम बनाना इसी तरह का प्रयास रहा है और न्यायपालिका का यह प्रयत्न 2012 तक निरंतर जारी रहा। 2012 के बाद विधायिका सकिय हुयी और नरेन्द्र मोदी के आने के बाद विधायिका न्यायपालिका से अप्रत्यक्ष टकराव में शामिल हो गयी। यह टकराव निरंतर जारी है। न्यायपालिका स्वयं को सर्वोच्च समझती है क्योंकि उसे संविधान के विभिन्न प्रावधानों की समीक्षा का सर्वोच्च अधिकारी मान लिया गया है। दूसरी ओर विधायिका अपने को संविधान संशोधन की सर्वोच्च अधिकार सम्पन्न इकाई मानती है। वर्तमान समय में न्यायपालिका इस सम्बन्ध में लगभग एकजुट है किन्तु विधायिका अन्य टकरावों के कारण न्यायपालिका से सम्बन्धों को विशेष महत्व नहीं दे रही है इसलिये यह टकराव अभी प्रत्यक्ष संघर्ष न होकर शीत युद्ध टिका हुआ है। न्यायपालिका को बहुत विशेष परिस्थिति को छोडकर कभी भी विधायी या कार्यपालिक आदेश नहीं देने चाहिये लेकिन दुर्भाग्य है कि भारत की न्यायपालिका दिन रात केवल विधायी और कार्यपालिक आदेश पारित करने में ही सकिय रहती है।

जनहित क्या है इसको सिर्फ विधायिका ही परिभाषित कर सकती है न्यायपालिका नहीं क्योंकि न्यायपालिका व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा तक ही सीमित है। सुरक्षा के अतिरिक्त न्यायपालिका व्यक्ति के हित की कोई चिंता नहीं कर सकती। व्यक्ति के हित की चिंता व्यवस्था

का काम है, न्यायपालिका का नहीं। इसका अर्थ हुआ कि न्यायपालिका को जनहित की याचिकाएं सुनने का कोई अधिकार नहीं है। न्यायपालिका अर्थात न्यायाधीशों को जनहित याचिका के माध्यम से अपनी वरीयता सिद्ध करने में आंनद आने लगा और उसका परिणाम हुआ कि न्यायपालिका के अपने सारे कार्य पिछडते चले गये। कितनी खराब स्थिति है कि न्यायपालिका राष्ट्रपति को निर्देश देती है कि फांसी की सजा का निर्णय अधिकतम किस समय सीमा में किया जाये या प्रधानमंत्री कितने महिनों तक किसी फाइल को रोककर रख सकते है। उन्हीं न्यायाधीशों ने कभी यह सीमा नहीं बनायी कि न्यायपालिका द्वारा किसी गंभीर आपराधिक मामले में निर्णय देने की समय सीमा क्या हो। आपराधिक मामले जीवन पर्यन्त चलते रहें और न्यायालय जनहित की चिंता करता रहे। यह धारणा जनहित के विरूद्ध है लोकतंत्र के भी विरूद्ध है और संविधान की मूल भावना के भी विरूद्ध है। न्यायपालिका की उच्श्रृंखलता वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था को कमजोर करने में महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हो रही है। अब तक जो कुछ भी हुआ उसे हम भूल जायें। विधायिका ने 70 वर्ष पूर्व गलतियां की उसे भी भूल जाने की आवश्यकता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि विधायिका की गलतियों का लाभ उठाकर न्यायपालिका तानाशाही की ओर बढना शुरू कर दे। भारत की जनता न किसी अव्यवस्था को स्वीकार करेगी न तानाशाही को। न्यायपालिका समाज में निरंतर यह विचार फैला रही है कि यदि विधायिका गलती करेगी तो न्यायपालिका का उसे रोकने के लिये आगे आना उसकी मजबूरी है। यह धारणा पूरी तरह गलत है। सबसे उपर भारत की जनता है, विधायिका से भी उपर, न्यायपालिका से भी उपर और संविधान से भी उपर। विधायिका से उपर न्यायपालिका तो कभी हो ही नहीं सकती क्योंकि विधायिका की गलतियों के लिये पांच वर्ष में समाज समीक्षा कर सकता है किन्तु यदि न्यायपालिका ने गलती कर दी तो उसकी समीक्षा कौन कर सकता है। उसकी समीक्षा न विधायिका कर सकती है न मतदाता। सन् 1975 में जब भारत में तानाशाही आयी थी तथा न्यायपालिका ने भी विधायिका और कार्यपालिका के समक्ष सरेन्डर कर दिया था तब भारत की जनता आगे आयी थी इसलिये न्यायपालिका को गंभीरतापूर्व अपनी सीमाओं को समझना चाहिये। यदि कहीं समाज को न्यायपालिका के विरूद्ध खडा होना पडा तो वह ज्यादा बुरा कालखंड होगा।

अंत में मेरा सुझाव है कि न्यायपालिका और विधायिका अपनी अपनी संवैधानिक सीमाओं को समझे और सर्वोच्च बनने के प्रयत्न से अपने को दूर कर लें। संविधान सर्वोच्च है और संविधान पर नियंत्रण के कोई भी प्रयास अनुचित माने जायेंगे, चाहे वे विधायिका के द्वारा किये जायें या न्यायपालिका के द्वारा।

प्रश्नोत्तर ''न्यायपालिका की स्वतंत्रता और सीमाएं''

प्रश्न–1 आदर्श और व्यावहारिकता में क्या अंतर है?

उत्तर–आदर्श का मतलब होता है सर्वश्रेष्ठ और व्यावहारिकता का अर्थ होता है संभव। व्यावहारिकता देश काल परिस्थिति का ऑकलन करके बनती है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को बेस्ट पॉसिबुल का मार्ग अपनाना चाहिये। बेस्ट आदर्श होता है और पॉसिबुल व्यावहारिक।

प्रश्न–2 क्या राज्य व्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमा नहीं बना सकता।

उत्तर–वर्तमान में राज्य ऐसा कर रहा है जो गलत है। व्यक्ति की स्वतंत्रता की प्राकृतिक सीमा बनी हुयी है कि कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकता। राज्य यदि कोई सीमा बनाता है तो वह उस प्राकृतिक सीमा का उल्लंघन करता है। राज्य का सिर्फ एक काम है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य की सीमा का उल्लंघन करे तो राज्य उस उल्लंघन कर्ता को रोके।

प्रश्न–3 क्या निकट भविष्य में ऐसी कोई संभावना दिखती है?

उत्तर–यह सही है कि अभी ऐसी कोई संभावना नहीं है किन्तु हमें इस दिशा में वैचारिक धरातल पर चर्चा जारी रखनी चाहिये। भविष्य की पीढीयां आगे बढ सकती है।

प्रश्न–4 क्या आप भारतीय लोकतंत्र को विकृत व्यवस्था मानते है?

उत्तर–भारतीय लोकतंत्र आदर्श लोकतंत्र की तुलना में विकृत व्यवस्था है तथा तानाशाही की तुलना में अच्छी व्यवस्था है। भारत में संविधान बनाने एवं कियान्वित करने की असीम स्वतंत्रता तंत्र के पास होना एक विकृत व्यवस्था है। आदर्श स्थिति में यह अधिकार लोक के पास होना चाहिये।

प्रश्न–5 लोकतंत्र का आदर्श अर्थ क्या होता है?

उत्तर–लोकतंत्र का अर्थ होता है लोक नियंत्रित तंत्र। तंत्र के तीन भाग होते है 1. न्यायपालिका 2 विधायिका 3. कार्यपालिका। तीनों को मिलाकर ही तंत्र होता है जो किसी संविधान द्वारा नियंत्रित होता है।

प्रश्न–6 क्या न्याय का एक मात्र यही अर्थ होता है कि प्रत्येक व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों की सुरक्षा हो?

उत्तर–मेरे विचार से तो न्याय का इतना ही अर्थ होता है।

प्रश्न–7 व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार कौन कौन से होते है?

उत्तर–सिर्फ एक अधिकार होता है स्वतंत्रता। स्वतंत्रता को चार भाग में बांट सकते है 1 जीने की 2. अभिव्यक्ति की 3 सम्पत्ति की 4. स्वनिर्णय की । इन चारो अधिकारों की कोई सीमा कोई अन्य नहीं बना सकता। यह अधिकार प्रत्येक व्यक्ति के पास प्राकृतिक रूप से समान होते है। आज कल सम्पत्ति की भी सीमा बनाने की भी बात होती है और अभिव्यक्ति की भी। यह पूरी तरह गलत है।

प्रश्न–8 क्या न्यायपालिका दंड नहीं दे सकती?

उत्तर–न्यायपालिका को ऐसे कोई अधिकार नहीं है। न्यायपालिका कानून के अनुसार दंड की मात्रा बता सकती है किन्तु दे नहीं सकती। वर्तमान समय में न्यायपालिका गलत दिशा में जा रही है।

प्रश्न–9 वर्तमान समय में न्यायपालिका जो कार्यपालिक या विधायी आदेश देती है वे आदेश गलत है क्या?

उत्तर–मेरे विचार से न्यायपालिका अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करती है। उसे इस प्रकार के आदेश नहीं देने चाहिये।

प्रश्न–10 यह कोशिश किस प्रकार की गयी?

उत्तर–सन् 1951 में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार के किसी निर्णय को असंवैधानिक घोषित कर दिया। तो नेहरू जी के दबाव में संसद ने न्यायालय के निर्णय को पलट दिया और आदेश दिया कि नवीं अनुसूची में डाले गये निर्णय न्यायिक समीक्षा से बाहर रहेगे। नवीं सूची उसी समय बनाई गई। यह संविधान में नहीं थी। इस तरह विधायिका ने अपने अधिकारो का दुरूपयोग किया।

प्रश्न–11 आपके विचार में विधायिका को संविधान में संशोधन का अधिक अधिकार प्राप्त है या न्यायपालिका को?

उत्तर–संविधान में कोई सर्वोच्च नहीं है बल्कि सभी एक दूसरे के पूरक है। विधायिका व्यक्ति के मौलिक अधिकारों से छेडछाड का कोई संविधान संशोधन नहीं कर सकती। यदि करती है तो उक्त संशोधन अमान्य हो जायेगा। इसी तरह न्यायपालिका विधायिका के कार्यो में दखल नहीं दे सकती है। वर्तमान समय में ये दोनो अपनी सीमाएं तोड रहे है।

प्रश्न–12 क्या जनहित की चिंता न्यायपालिका नहीं कर सकती?

उत्तर– प्राकृतिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र होता है। स्वतंत्रता उसका मौलिक अधिकार है। व्यावाहिरक रूप से व्यक्ति समाज की इकाई है प्रत्येक व्यक्ति को सहजीवन अपनाना बाध्यकारी होता है। स्वतंत्रता और सहजीवन के बीच तालमेल होता है। स्वतंत्रता की सुरक्षा न्यायपालिका करती है और व्यक्ति को सहजीवन के लिये बाध्य व्यवस्था करती है जिसमें तंत्र के तीनो भाग शामिल होते है।

प्रश्न–13 जब न्यायालय में न्यायाधीशों के पद कम है और जो है वे भी खाली है तो न्याय में विलंब स्वाभाविक है?

उत्तर–यह सिर्फ न्यायपालिका का बहाना मात्र है। जब न्यायाधीश कम है तो न्यायपालिका अपना काम छोडकर जनहित याचिका अथवा अन्य कार्य में क्यों सक्रिय है। न्यायपालिका पहले अपना काम करे और बाकी का काम छोड दे। उसके बाद सोचा जायेगा कि क्या होता है? यदि न्यायपालिका अपने को न्याय तक सीमित कर ले तो वर्तमान न्यायाधीश पर्याप्त है और यदि न्यायपालिका हर काम में पैर फंसायेगी तो चाहे जितने जज बढा दें कोई बदलाव नहीं आयेगा।

प्रश्न–14 न्यायालय जनहित की चिंता क्यों नहीं कर सकता?

उत्तर– जब न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका के काम आपस में बंटे हुये है तो कोई इकाई किसी दूसरे के कार्य में दखल नहीं दे सकती। जनहित को परिभाषित करना विधायिका का काम है न्यायपालिका का नहीं।

प्रश्न–15 न्यायपालिका विधायिका की किन गलतियों का लाभ उठा रही है?

उत्तर–संविधान लागू होने के शीघ्र बाद ही विधायिका ने न्यायपालिका और कार्यपालिका के अधिकार कम कर दिये। विधायिका जितनी शक्तिशाली होती गई, उतना ही उसमें भ्रष्टाचार बढता गया और उसकी प्रतिष्ठा गिरती गई। आज भी भारतीय राजनीति को भ्रष्टाचार का सबसे बडा अडडा माना जाता है। न्यायपालिका विधायिका की इस बदनामी का लाभ उठा रही है।

प्रश्न–16 क्या भारत की जनता संविधान से भी उपर है?

उत्तर–आदर्श स्थिति तो यही है किन्तु वर्तमान स्थिति इसके ठीक विपरीत है वर्तमान समय में भारत की जनता तंत्र की गुलाम है क्योंकि संविधान ही तंत्र का गुलाम है तो जनता बिचारी क्या करें।

प्रश्न–17 क्या आप विधायिका को न्यायपालिका से उपर मानते है?

उत्तर–मैं तो तीनों को समकक्ष मानता हूँ क्योकि व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा में न्यायपालिका उपर है तो व्यक्ति को सहजीवन के लिये बाध्य करने की भूमिका में विधायिका सबसे उपर है। फिर भी यदि दोनो की तुलना में किसी एक को अधिक उपर आना ही हो तो न्यायपालिका तुलना में विधायिका का अधिक महत्व है।

प्रश्न–18 यदि न्यायपालिका अपनी सीमाएं ना समझे तो समाज क्या करें?

उत्तर–जब तक भारत की राजनीति भ्रष्टाचार मुक्त नहीं होती तब तक न्यायपालिका पर नियंत्रण संभव नही है। क्योकि न्यायपालिका की तुलना में विधायिका में भ्रष्टाचार कई गुना अधिक है इसलिये सबसे पहले विधायिका को सुधरने या सुधारने की जरूरत है। उसके बाद न्यायपालिका समझ जायेगी या समझा दी जायेगी।

मंथन क्रमांक 126 '' सहजीवन और सतर्कता''

स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार होता है और सहजीवन उसकी सामाजिक मजबूरी। स्वतंत्रता सबकी समान होती है। स्वतंत्रता की सीमा प्राकृतिक रूप से बनी हुयी है। कोई भी अन्य व्यक्ति या व्यवस्था किसी अन्य की सहमति के बिना उसकी कोई सीमा नहीं बना सकता। सामाजिक जीवन प्रत्येक व्यक्ति की मजबूरी है। इसी मजबूरी के अन्तर्गत पहली इकाई परिवार बनती है और उसके बाद ग्राम सभा, प्रदेश, राष्ट्र आदि। किसी अन्य व्यक्ति के साथ जुड़ते ही स्वतंत्रता अपने आप सामूहिक और सीमित हो जाती है। सहजीवन के लिये बनने वाली सामाजिक इकाई के रूप में परिवार पहली इकाई है। वर्तमान पारिवारिक व्यवस्था के अनुसार अधिकांश परिवार प्राकृतिक रूप से चलते रहते है और विशेष परिस्थिति में मत विभिन्नता होने पर टूटकर अलग होते है। कभी–कभी ही अलग–अलग लोग आपस में सहमत होकर परिवार बनाते है।

सफलतापूर्वक सहजीवन का निर्वाह करना आमतौर पर कठिन होता है क्योंकि व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि उसे दूसरे व्यक्ति के साथ किस सीमा तक, किस तरह व्यवहार करना चाहिये। दुनियां के प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव, गुण–अवगुण और अच्छी– बुरी नीयत का निर्णय आसान नहीं

होता इसलिये यह निर्णय और भी कठिन हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता भी समान नहीं होती इसलिये भी उसे सही निर्णय करने में कठिनाई होती है। फिर भी यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी अन्य के साथ व्यवहार करते समय कुछ बातों का ध्यान रखे। सामान्यतया सम्बन्ध आठ प्रकार के माने जाते है– 1. सहभागी 2. सहयोगी 3. समर्थक 4. प्रशंसक 5. समीक्षक 6. आलोचक 7. विरोधी 8. शत्रु। 1. सहभागी व्यक्ति वह होता है जो आपकी पूरी सफलता–असफलता या लाभ–हानि में बराबर का भागीदार होता है। आपका और उसका सबकुछ सामूहिक होता है, किसी का कुछ व्यक्तिगत नहीं होता। इस श्रेणी में आमतौर पर परिवार को माना जाता है। 2. सहयोगी उस व्यक्ति को माना जाता है जो आपके किसी कार्य में सक्रिय सहयोग तो करता है किन्तु लाभ–हानि में हिस्सेदार नहीं होता। आमतौर पर सहयोगी संगठन से बाहर का व्यक्ति या सदस्य होता है। 3. समर्थक वह व्यक्ति होता है जो आपके किसी कार्य का बाहर रहकर सिर्फ मौखिक समर्थन करता है, सक्रिय सहयोग नहीं करता। 4. प्रशंसक वह व्यक्ति माना जाता है जो आपके अच्छे कार्यो की प्रशंसा करता है किन्तु आप यदि गलती करते है या बुरा करते है तब वह व्यक्ति चुप रहता है। इसी तरह आपका कोई कार्य जनहित में है तब प्रशंसक की भूमिका अलग होती है और सक्रिय होती है किन्तु यदि वह कार्य जनहित के विरूद्ध है तब प्रशंसक उसमें चुप हो जाता है। यदि आपका कोई कार्य गलत भी है तो सहभागी उसे कुछ झूठ बोलकर, तोड़ मरोड़ कर सही सिद्ध कर देता है। सहयोगी सिर्फ घुमाफिराकर अर्थ बदल देता है। समर्थक और प्रशंसक ऐसी गलती के मामले में प्रायः चुप हो जाते है। 5. समीक्षक उस व्यक्ति को कहते है जो आपके बिल्कुल भी पक्ष या विपक्ष में नहीं होता है। वह व्यक्ति पूरी तरह तटस्थ होता है और गुण–अवगुण, अच्छे–बुरे की तटस्थ समीक्षा करता है। 6. आलोचक वह होता है जो आपके अच्छे कार्यो में तो चुप हो जाता है और गलत कार्यो को समाज के समक्ष जैसा है, वैसा ही प्रस्तुत करता है। आलोचक किसी घटना को घुमाफिराकर अथवा तोड़ मरोड़ कर प्रस्तृत नहीं करता। 7. विरोधी वह व्यक्ति होता है जो आपके गलत कार्यो को तो गलत कहता ही है किन्तु सही कार्यो को भी घुमाफिराकर अथवा तोड़ मरोड़ कर गलत सिद्ध करने का प्रयास करता है किन्तु विरोधी किसी मामले में भी झूठ नहीं बोलता। 8. शत्रु वह होता है जो आपके विषय में किसी प्रकार का झूठ बोल सकता है। शत्रु उचित–अनुचित, न्याय–अन्याय की परवाह नहीं करता। इस तरह व्यक्तियों में आठ प्रकार की भूमिकाएं होती है। आमतौर पर कोई व्यक्ति इस तरह अलग–अलग ना समझने के कारण भ्रम में पडकर गलत निर्णय कर लेता है और उसका उसे नुकसान होता है। बुद्धि प्रधान लोग प्रायः गलत ऑकलन नही करते किन्तु भावना प्रधान लोग प्रायः गलत ऑकलन करते है। मैंने कई लोगों को देखा है जो सामान्यतया मित्र के साथ भाई जैसा पारिवारिक व्यवहार रखते है किन्तु वे किसी एक जरा सी बात पर इतनी जल्दी नाराज हो जाते है कि उसे शत्रुवत मान लेते है। होना तो यह चाहिये कि किसी को मित्र अथवा भाई के समान मानने के पूर्व लम्बे समय तक उसका व्यावहारिक परीक्षण किया जाये और सम्बन्ध बिगड़ते समय भी उस गलत व्यवहार की गंभीरता से क्रमशः ऑकलन किया जाये। भावना में बहकर जल्द बाजी में लिये गये निर्णय हमेशा घातक होते है। सोच समझकर निर्णय करना चाहिये और धीरे–धीरे व्यक्ति के साथ व्यवहार में उपर नीचे का बदलाव करना चाहिये। एकाएक या जल्दबाजी में नहीं।

मैंने स्वयं इन स्थितियों में धीरे–धीरे ऑकलन करने की आदत डाली। परिणाम हुआ कि मुझे अपने पूरे सार्वजनिक जीवन में बहुत ही कम लोगों के विषय में अपनी धारणाओं में बहुत अधिक बदलाव करना पडा। यदि बदलाव भी किया गया तो बदलाव बहुत धीरे–धीरे किया गया और सोच समझकर किया गया। मेरी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक मामलों में अनेक प्रमुख लोगों के विषय में निश्चित धारणा रही है। इसी तरह ऐसे सिद्धान्तों पर भी और ऐसी घटनाओं पर भी मैं निश्चित प्रतिक्रिया व्यक्त करता रहा हूॅ जो दो–तीन दशकों से लगातार ज्ञान तत्वों में प्रकाशित होती रही है। धार्मिक मामलों में, मैं हिन्दुत्व का पूरी तरह समर्थक रहा हूॅ। इसाईयत का समीक्षक, इस्लाम का विरोधी तथा साम्यवाद को शत्रुवत मानता रहा हूॅ। मेरे विचार से साम्यवाद में एक भी ऐसा गुण नहीं है जिसके कारण उसे शत्रु से अलग किया जाये। हिन्दुओं में भी मैं संघ परिवार, शिवसेना आदि का आलोचक रहा हूॅ। संघ परिवार में अनेक अच्छाईयां होते हुये भी गांधी हत्या के विषय में उनकी धारणा से मुझे बहुत विरोध है। मैं पूरी तरह गांधी का प्रशंसक हूॅ और किसी भी स्थिति में गांधी हत्या को हिन्दुत्व के विरूद्ध समझता हूॅ इसलिये मेरे मन से यह धारणा बिल्कुल नहीं निकल पाती है। राजनैतिक आधार पर मैं मनमोहन सिंह, नीतिश कुमार, नरेन्द्र मोदी, अखिलेश यादव, केरल के पूर्व मुख्यमंत्री अच्युतानंदन, बंगाल के पूर्व मुख्यमंत्री बुद्धदेव भटटाचार्य, ए. के. एंटोनी, शांता कुमार, शिवराज सिंह चौहान, रमन सिंह, खंडूरी, बाबूलाल मरांडी आदि को अच्छे राजनीतिज्ञों में गिनता हूॅ और इनका प्रशंसक हूॅ। दूसरी ओर लालू प्रसाद यादव, रामविलास पासवान, मायावती, मुलायम सिंह यादव, प्रकाश करात, ममता बनर्जी, शिब्बू सोरेन, नवजोत सिंह सिद्धू का मैं हमेशा से आलोचक हूॅ। इसी सूची से करूणा निधि, जय ललिता आदि की मृत्यु के कारण उनके नाम निकाल दिये गये है। इन सब के बाद भी मैं वर्तमान परिस्थितियों में व्यक्तिगत रूप से राहुल गांधी को सबसे अच्छा मानता हूॅ किन्तु उन्हें किसी भी परिस्थिति में दस से पंद्रह वर्ष सत्ता के पदों पर जाने के पूरी तरह विरूद्ध हूॅ क्योंकि राहुल गांधी में कुटनीतिक दूरदर्शिता का अभाव है तथा राहुल गांधी का आगे बढना एक पारिवारिक गुलामी का आभाष कराता है, योग्यता का नहीं। इसी तरह सत्ता के मामले में नरेन्द्र मोदी को एक मात्र सफल व्यक्तित्व मानता हूॅ और वर्तमान समय में, मैं उनका पूरी तरह पक्षधर हूॅ। मैं तानाशाही, लोकतंत्र और लोकस्वराज्य का अंतर समझता हूॅ। व्यवस्था का अंतिम पडाव या तो तानाशाही है या लोकस्वराज्य। लोकतंत्र बीच की सीढी है। यदि लोकतंत्र लम्बे समय तक चलेगा तो अव्यवस्था निश्चित है और अव्यवस्था का एक मात्र समाधान है तानाशाही। मनमोहन सिंह लोकतंत्र के आधार पर चले जिसका परिणाम हुआ अव्यवस्था और अव्यवस्था का परिणाम हुआ तानाशाही की भूख अर्थात नरेन्द्र मोदी। इसलिये वर्तमान अव्यवस्था का एक मात्र समाधान नरेन्द्र मोदी ही दिखते है। यदि स्वतंत्रता के समय के राजनेताओं का ऑकलन करे तो मैं सुभाष चंद्र बोस, भगत सिंह, चंद्र शेखर आजाद आदि के मार्ग को ठीक नहीं मानता क्योंकि मैं गांधी मार्ग का पक्षधर हूॅ। संघ परिवार ने भी स्वतंत्रता के पूर्व और स्वतंत्रता के शीघ्र बाद जिस तरह राजनीति में हस्तक्षेप किया वह अच्छा नहीं था। संघ परिवार की तुलना में आर्य समाज की भूमिका अच्छी थी। स्वतंत्रता के बाद जो लोग सत्ता में आये उनमें सबसे अधिक गलत भूमिका भीम राव अम्बेडकर की रही है। यही कारण है कि मैं हमेशा उनका विरोधी रहा। नेहरू, सरदार पटेल आदि की भी भूमिका स्वतंत्रता के बाद बहुत अच्छी नहीं रही है। इन लोगों ने जिस तरह का संविधान बनाकर दिया उसे देखते हुये मैं हमेशा इनका आलोचक रहा हूॅ। इन सबकी गलतियों के कारण ही समाज में अव्यवस्था भी फैली और वर्ग संघर्ष भी।

इन लोगों ने मिलजुलकर जयप्रकाश नारायण, डॉ राममनोहर लोहिया जैसे लोगो को किनारे कर दिया। मैं राम मनोहर लोहिया और जय प्रकाश नारायण का समर्थक रहा हूॅ। सामाजिक मामलों में भी मैं समाज सुधार के लिये कानून के हस्तक्षेप को घातक मानता रहा हूॅ। समाज की बुराईयॉ दूर करना समाज का काम है राज्य का नहीं। कानून को सुरक्षा और न्याय तक सीमित रहना चाहिये इसलिये मैं किसी भी सरकार द्वारा छुआछूत उन्मूलन, गरीबी अमीरी रेखा, शराब बंदी, गो हत्या पर प्रतिबंध, महिला सशक्तिकरण, शिक्षा विस्तार जैसे प्रयत्नों का आलोचक रहा हूॅ। मैं हिन्दू धर्म व्यवस्था का बहुत अधिक प्रशंसक हूॅ क्योंकि हिन्दुओं में परिवार व्यवस्था, पहचान प्रधान की जगह गुण प्रधान धर्म को महत्व, धर्म परिवर्तन के प्रयत्नों का विरोध तथा वर्ण व्यवस्था को अन्य सब की तुलना में बहुत अच्छा मानता हूॅ। यद्यपि कानून के अनावश्यक हस्तक्षेप के कारण ये व्यवस्थाएं कुछ–कुछ विकृत हो गई हैं जिन्हें ठीक करना चाहिये। व्यक्ति को जीवन में सफल होने के लिये इस प्रकार की ट्रेनिंग होनी चाहिये कि वह प्रत्येक व्यक्ति के विषय में ठीक ठीक ऑकलन कर सके। मैं महसूस करता हूॅ कि जीवन में सफलता के लिये समाज को सर्वोच्च मानना चाहिये। इसके लिये प्रत्येक व्यक्ति में सहजीवन की ट्रेनिंग होनी चाहिये और सहजीवन की ट्रेनिंग का प्रारंभ परिवार से ही हो सकता है जिससे व्यक्ति धीरे–धीरे अन्य व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार उसके साथ अपने सम्बन्धों की सीमाएं निर्धारित करने की आदत डाल सके। यह अंतर ना समझने के कारण ही समाज में अव्यवस्था फैलती है। आमतौर पर अच्छे लोगो में यह कमी होती है कि वे अन्य व्यक्तियों के विषय में कुछ व्यक्तिगत धारणाएं बना लेते है। यदि उनकी दृष्टि में कोई बहुत अच्छा आदमी है और वह थोडी सी गलती कर दे तो यह अच्छे लोग उसके आलोचक हो जाते है। दूसरी ओर यदि कोई बहुत बुरा आदमी थोडा सा अच्छा काम कर दे तो ये प्रशंसक हो जाते है। यदि अच्छे लोगो की समझदारी बढ जाये तो ऐसी गलती नही होगी। इसलिये मेरा यह मत है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी धारणा निश्चित करने के पूर्व समझदारी बढनी चाहिये।

जो लोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमारे सम्पर्क में रहते है उन्हें यदि आठ आधारों पर विभाजित करके हम व्यवहार निश्चित करेंगे तो हमें बहुत सुविधा होगी। जो लोग हमारे प्रशंसक, समर्थक, सहयोगी या सहभागी है उनकी कभी सार्वजनिक आलोचना नही करनी चाहिये। ऐसे लोगो पर कभी व्यक्तिगत टिप्पणी से भी बचना चाहिये। जो लोग हमारे शत्रु या विरोधी है उन्हें बिना मांगे सलाह नहीं देनी चाहिये। इसी तरह आलोचक, विरोधी या शत्रु से किसी विषय पर अकेले में तर्क नहीं करना चाहिये तथा सार्वजनिक रूप से भी तर्क करते समय सर्तक रहना चाहिये। इस तरह की अनेक सावधानियां संकट से बचा सकती है।

प्रश्नोत्तर '' सहजीवन और सतर्कता''

प्रश्न–1 आप परिवार को प्राकृतिक इकाई मानते है या संगठनात्मक?

उत्तर–अब तक भारत में परिवार को प्राकृतिक इकाई माना जाता है। परिवार का मुखिया अपने आप बन जाता है। परिवार की सम्पत्ति में भी सबका बराबर हिस्सा नहीं रहता। इसलिये परिवार व्यवस्था कमजोर हो रही है। मेरे विचार से परिवार को संगठनात्मक इकाई होना चाहिये।

प्रश्न–2 कोई व्यक्ति किन्ही दो भूमिकाओं में हो सकता है कि नहीं?

उत्तर–किसी भी व्यक्ति की भूमिका आप स्वयं तय करते है वह व्यक्ति तय नहीं करता। भूमिका बदलती रहती है। इसलिये इस संबंध में कुछ कहना संभव नहीं है।

प्रश्न–3 परिवार में परिवार प्रमुख के अतिरिक्त अन्य सदस्य सहयोगी होते है या सहभागी?

उत्तर–परिवार का प्रत्येक सदस्य सहभागी होता है परिवार में कोई सहयोगी या समर्थक नहीं होता क्योंकि परिवार के सुख दुख में तथा लाभ हानि में सबकी समान भूमिका रहती है।

प्रश्न–4 क्या संगठन के अंदर का व्यक्ति सहयोगी नहीं हो सकता?

उत्तर–यदि संगठन में सबको समान अधिकार है तब कोई व्यक्ति सहभागी हो सकता है सहयोगी नहीं। यदि संगठन बनाते समय कोई अलग से नियम होगा तो अलग बात है।

प्रश्न–5 क्या समर्थक सक्रिय सहयोग नहीं कर सकता?

उत्तर–जो सक्रिय सहयोग करेगा वह सहयोगी माना जायेगा, समर्थक नहीं। जो सहयोग करता है वह समर्थन तो करता ही है साथ साथ सक्रिय सहयोग भी करता है।

प्रश्न–6 यदि आप गलती करे और हम चुप रहे यह अच्छी बात है क्या?

उत्तर–हम प्रशंसक की परिभाषा बना रहे है। अच्छी बुरी की व्याख्या नही कर रहे है।

प्रश्न–7 आप अपने को क्या मानते है?

उत्तर– अलग अलग व्यक्तियों से ही अलग अलग भूमिकाएं होती है। मैं गुण दोष के आधार पर किसी की समीक्षा करता हूॅ किसी की प्रशंसा और किसी का विरोध।

प्रश्न–8 क्या यह उचित है कि सही कार्य को भी घुमाफिराकर गलत सिद्ध कर दिया जाये?

उत्तर–यदि कोई व्यक्ति आपके अनुसार विरोधी है तो विरोधी के लिये ऐसा किया जा सकता है।

प्रश्न–9 हिन्दुओं के लिये इसाई अधिक खतरनाक है क्योंकि वे तेजी से धर्म परिवर्तन करते है?

उत्तर– मैं इसाईयत की तुलना में इस्लाम को अधिक कट्टर मानता हूॅ।

प्रश्न–10 क्या आप संघ समर्थक है?

उत्तर–यदि इस्लाम इसाईयत और संघ की तुलना होती है तो मैं संघ का समर्थक हूँ। यदि हिन्दुत्व और संघ की तुलना होती है तो मैं संघ का आलोचक हूँ। कुल मिलाकर मैं संघ को हिन्दुत्व के संकट निर्वारण की दवा के रूप में देखता हूँ किन्तु संकट टलते ही दवा का रीएक्शन भी शुरू हो जाता है।

प्रश्न–11 क्या पांच सात वर्ष पूर्व भी इन सब के विषय में आपकी धारणा ऐसी ही थी।

उत्तर–दस पंद्रह वर्षो से मेरी धारणा ऐसी रही है। मैं यह बात हमेशा ज्ञान तत्व में लिखता भी रहा हूँ। आप पुराने अंको में पढ सकते है।

प्रश्न–12 आपने राहुल गांधी में क्या गुण देखे?

उत्तर– मेरे विचार में राहुल गांधी में शराफत अधिक है और सीमा से अधिक शराफत राजनीति के लिये घातक होती है। यदि राहुल गांधी राजनीति मे ना रहे तो वे बहुत अच्छै विचारक निकल सकते है। सोनिया गांधी का पुत्र मोह मनमोहन सिंह को भी ले डूबा कांग्रेस को भी ले डूबेगा और राहुल गांधी भी उपयुक्त जगह पर नहीं पहुँच पायेगे।

प्रश्न–13 क्या आप नरेन्द्र मोदी को तानाशाह मानते है?

उत्तर–वर्तमान समय में अव्यवस्था के समाधान के लिये जितनी तानाशाही की जरूरत है उतनी क्षमता नरेन्द्र मोदी में है। देश की पूरी राजनीति धीरे धीरे राष्ट्रपति प्रणाली की ओर बढ रही है। चुनाव के पूर्व ही देश की जनता ने सोच समझकर मोदी को चुना था।

प्रश्न–14 क्या आप क्रांतिकारियों के त्याग को ठीक नहीं समझते?

उत्तर–मैं क्रांतिकारियों के त्याग की समीक्षा नही कर रहा बल्कि मार्ग की समीक्षा कर रहा हूँ। यदि गांधी भी क्रांतिकारियों के साथ ही शहीद हो जाते तो स्वतंत्रता में उतना अंतर नही आता जितना यदि क्रांतिकारी अपना मार्ग छोडकर गांधी मार्ग पर चलते तब आता। मैं स्वतंत्रता में गांधी मार्ग को अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ यद्यपि त्याग दृष्टि से क्रांतिकारियों ने गांधी की तुलना में कई गुना अधिक त्याग किया है।

प्रश्न–15 आप अम्बेडकर जी के इतने विरोधी क्यों है?

उत्तर–स्वतंत्रता के पूर्व से लेकर स्वतंत्रता के बाद तक अम्बेडकर जी हमेशा सत्ता की तिकडम लगे रहे। उन्होंने स्वतंत्रता की तुलना में दाव पेंच को अधिक महत्व दिया। जिस तरह का संविधान बना वह भी वर्ग विद्वेष, वर्ग संघर्ष बढाने में सहायक रहा। मैं श्रम और बुद्धि के बीच निरंतर बढ रही दूरी को घातक मानता हूँ। श्रमजीवियों के साथ अम्बेडकर जी ने धोखा किया। मैं कैसे उनकी प्रशंसा करू।

प्रश्न–16 क्या जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, गांधी के अधिक निकट थे?

उत्तर–स्वतंत्रता के पूर्व की बात मैं नही बता सकता किन्तु स्वतंत्रता के बाद इन दोनो की भूमिका गांधी विचारो के पक्ष में रही है और नेहरू, पटेल की विरोध में।

प्रश्न–17 क्या आप शराब बंदी या गो हत्या पर भी प्रतिबंध के खिलाफ है?

उत्तर–किसी प्रकार के प्रतिबंध के लिये जनमत संग्रह होना चाहिये। जब तक समाज सहमत न हो तब तक सरकार को कानून नहीं बनाना चाहिये। छुआछूत उन्मूलन के कानून भी बनाना गलत था क्योकि यह कार्य सामाजिक बुराई है और समाज उसे दूर कर लेगा। सरकार को उससे दूर रहना चाहिये। महिला सशक्तिकरण परिवार या समाज का कार्य है सरकार का नहीं।

प्रश्न–18 क्या आप कटटर हिन्दू है?

उत्तर–यदि कटटरता का अर्थ गुण प्रधानता है तो मैं कटटर हिन्दू हूँ क्योंकि मुझे हिन्दू धर्म गुण प्रधान दिखता है।

प्रश्न–19 एक तरफ आप लिखते है कि तानाशाही से लोकतंत्र अच्छा है। दूसरी तरफ आप नरेन्द्र मोदी की तानाशाही के प्रशंसक भी है। इन दोनो में क्या फर्क है।

उत्तर– व्यवस्था ही सिर्फ दो ही होती है। तानाशाही या लोकस्वराज्य। लोकतंत्र इन दोनो के बीच की अल्पकालिक व्यवस्था दीर्घकालिक नहीं। यदि लोकतंत्र लोकस्वराज्य की दिशा में नहीं जायेगा तो वह अपने आप तानाशाही की दिशा में बढ जायेगा। जायेगा। वर्तमान समय में भारत में लोकतंत्र को 70 वर्ष हो गये और वह लोकस्वराज्य की दिशा में नही बडा। परिणामस्वरूप उसमें सड़न पैदा हुई और समाधान के लिये वह तानाशाही की ओर बढ गया। वर्तमान भारत में नरेन्द्र मोदी के अतिरिक्त कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता है जो सफल तानाशाह बन सके। यदि नरेन्द्र मोदी को रोक दिया जाये तो भविष्य में किसी ओर बडी तानाशाही का खतरा है। यदि नरेन्द्र मोदी और तानाशाही से बचना है। तो उसका समाधान वर्तमान लोकतंत्र नहीं है बल्कि किसी व्यक्ति या समूह को लोकस्वराज्य का विश्वास प्रस्तुत करना चाहिये अन्यथा वर्तमान लोकतांत्रिक प्रणाली के नेतृत्व में मोदी का कोई विकल्प नहीं।

मंथन क्रमांक 127 ''सर्वोत्तम संभव का सिद्धान्त''

आदर्शवाद और व्यावहारिकता बिल्कुल भिन्न–भिन्न होते है। आदर्श का अर्थ होता है क्या करना उचित है और व्यावहारिकता का अर्थ होता है कि क्या होना आसान है। उच्च आदर्श अव्यावहारिक हो सकता है और किसी भी व्यक्ति को असफल बना सकता है। उच्च व्यावहारिकता व्यक्ति को पतित बना सकती है और सफलता के कीर्तिमान बना सकती है। सर्वोत्तम का सफल होना कभी संभव नहीं होता और जो आसानी से होना संभव है, वह सर्वोत्तम नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की सोच नीयत और क्षमता अलग–अलग होती है। चाहे आदर्श हो अथवा व्यवहार कोई भी कभी भी व्यक्तिगत नहीं हो सकता। एक से अधिक व्यक्ति जुडते ही है इसलिये सबके तरीके और परिणाम अलग–अलग होते है।

व्यक्ति दो प्रकार होते है–1. बुद्धि प्रधान और 2. भावना प्रधान। बुद्धि प्रधान व्यक्ति व्यावहारिक अधिक होते है और सैद्धांतिक कम। दूसरी ओर भावना प्रधान व्यक्ति आदर्शवादी अधिक होते है, व्यावहारिक कम। इस प्रकार के लोगो को व्यावहारिकता सिखाने के लिये संस्कारित किया जाता

है और संस्कार ही आदर्श को व्यावहारिकता से तालमेल की ट्रेनिंग देता है। दुनियां की सभी व्यवस्थाओं में भारतीय सामाजिक व्यवस्था एक मात्र ऐसी रही है जिसमें वर्ण व्यवस्था के माध्यम से आदर्श और व्यवहार के सामन्जस्य का प्रयास किया गया। मार्गदर्शक अर्थात ब्राह्मण आदर्श की ट्रेनिंग देते थे तो अन्य तीन रक्षक, पालक और सेवक अर्थात क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उस आदर्श के साथ व्यावहारिकता का तालमेल करके उसे प्रयोग में लाते थे। आदर्श और व्यवहार का वर्ण व्यवस्था में अच्छा तालमेल था। जब वर्ण व्यवस्था विकृत हुयी और उसकी जगह कोई अधिक अच्छी व्यवस्था नहीं आ सकी तब आदर्श और व्यवहार का तालमेल टूट गया। परिणाम हुआ कि आदर्शवादी लोग अपने जीवन में अव्यावहारिक होकर असफल होने लगे तो उच्च व्यावहारिक लोग अपने जीवन में आदर्श को त्याग कर सफलता की सीढ़ियां चढने लगे। स्पष्ट है कि आदर्श कमजोर होकर पुरानी किताबो तक सीमित हो गया और व्यावहारिक धरातल से दूर हो गया। वर्तमान समय में वर्ण व्यवस्था को किसी संशोधित स्वरूप में जीवित करना कठिन कार्य है इसलिये आपातकाल समझकर प्रत्येक व्यक्ति को आदर्श और व्यवहार के बीच संतुलन बनाने के लिये सर्वोत्तम संभव का मार्ग सीखना चाहिये। सर्वोत्तम का प्रयास व्यक्ति को जीवन में असफल कर देता है और अधिकतम संभव का प्रयास पतित इसलिये सर्वोत्तम संभव का मार्ग अपनाना चाहिये। इसका अर्थ हुआ कि व्यक्ति को अपनी योग्यता और क्षमता का ऑकलन करके उसके अनुसार अपना लक्ष्य बनाना चाहिये लेकिन लक्ष्य आदर्श के साथ जुडा हुआ भी होना चाहिये।

मैं देखता हूँ कि उच्च आदर्श वाले लोग समाज से अलग थलग होते जा रहे है और समाज में समस्याएं पैदा कर रहे हैं क्योकि ऐसे उच्च चरित्रवान लोग स्वयं को छोडकर अन्य सबको चरित्र हीन मानते है, उन्हें उच्च आदर्शवादी बनने की प्रेरणा देते है और ऐसा व्यक्ति क्षमता न होने के कारण उस प्रयास में या तो असफल हो जाता है या उसके विरूद्ध हो जाता है। ये उच्च चरित्रवान लोग वर्तमान स्थिति का ठीक से ऑकलन नहीं कर पाते। यदि कोई सिद्धांत व्यावहारिक ना हो तो वह घातक होता है इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह वर्तमान स्थिति में सर्वोत्तम संभव अर्थात बेस्ट पासिबुल के आधार पर नीति निर्धारण करे। इसका सबसे अच्छा तरीका यह है कि आप लक्ष्य चाहे जितना उँचा रखे किन्तु कार्य योजना बनाते समय परिस्थितियों और अपनी क्षमता का ऑकलन करके अल्पकालिक योजना बनावें, उस योजना की समीक्षा करे और उसे समय–समय पर संशोधित भी करते रहे। अव्यावहारिक लक्ष्य बनाना उचित नहीं होता इसलिये आदर्श और व्यवहार का तालमेल होना चाहिये।

मैंने अपने जीवन में बहुत बाद में इस सर्वोत्तम संभव का महत्व महसूस किया। प्रारंभ में मैंने उच्च आदर्शवादी विचारों को सक्रिय करने का प्रयत्न किया। उस समय संचार माध्यमों का अभाव था और मैं नहीं समझ पाया कि पूरी दुनियां या भारत का सैद्धांतिक धरातल कितना नीचे चला गया है। मैंने अपने छोटे से परिवार और शहर पर उच्च आदर्शवादी नीतियां लागू करने का प्रयत्न किया। परिवार पर तो प्रभाव पडा किन्तु शहर पर प्रभाव क्षणिक ही हुआ और वह प्रयत्न आगे नहीं बढ सका। मैंने शहर में जाति प्रथा को तोडने का प्रयास किया तथा मेरे द्वारा अपराध नियंत्रण के लिये भी बहुत प्रयास किया गया। हडताल और दवाब से चंदा रोका गया। साम्प्रदायिक कटुता को भी रोका गया। वहां लोगो ने भरपूर साथ दिया। ऐसा लगने लगा कि हमारा यह प्रयत्न बहुत अधिक सफल हो सकता है किन्तु इस प्रयत्न को जितना ही ज्यादा आदर्शवाद की दिशा में बढाने की कोशिश हुई उतना ही अधिक यह प्रयत्न अव्यावहारिक होता चला गया। अब स्थिति यह है कि सारे प्रयत्न धीरे धीरे फिर सैद्धांतिक और आदर्शवादी धरातल से दूर होते जा रहे है फिर से वहीं बुराईयां शुरू हो रही है जिन्हे रोकने का प्रयास हुआ। महसूस किया गया कि उच्च आदर्शवादी लक्ष्य यदि अव्यावहारिक हो तो दीर्घकालिक परिणाम नहीं दे सकते इसलिये मैंने निष्कर्ष निकाला कि प्रत्येक व्यक्ति को आदर्श और ाउसकी सफलता की संभावनाओं के साथ तालमेल करके ही किसी कार्य की योजना बनानी चाहिये। उच्च आदर्शवादी बाते प्रवचन व उपदेश के लिये तो उपयोगी हो सकती है किन्तु व्यावहारिक धरातल पर उतारना कठिन कार्य है। आमतौर पर लोग दूसरों की समीक्षा न करके आलोचना अधिक करते है और बिना आवश्यकता के सलाह देते है। प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता और परिस्थितियां अलग अलग होती है। आप अपनी क्षमतानुसार ऑकलन करके दूसरो की आलोचना करें, यह अव्यावहारिक और अनुचित है इसलिये इससे बचना चाहिये।

इस संबंध में हम सब साथी मिलकर एक नया प्रयत्न कर रहे है। ज्ञान यज्ञ के माध्यम से हम प्रयत्न कर रहे है कि व्यक्ति की स्वयं की उचित अनुचित के बीच निर्णय करने की क्षमता बढे। बजरंग मुनि सामाजिक शोध संस्थान के माध्यम से हम प्रयत्न कर रहे है कि कुछ निश्चित विषयों पर कुछ अच्छे विचारकों की एक टीम बने जो सिर्फ विचार मंथन तक सीमित रहे। दोनों आधार पर देश भर में प्रयत्न जारी है।

प्रश्नोत्तर ''सर्वोत्तम संभव का सिद्धान्त''

प्रश्न–1 यदि आदर्श उँचा नही होगा तो सफलता भी नहीं मिलेगी।

उत्तर–यदि आदर्श इतना उँचा होगा जो असंभव है या आपकी क्षमतानुसार संभव नहीं है तो असफलता निश्चित है इसलिये क्षमता से अधिक आदर्श उचित नहीं है।

प्रश्न–2 क्या सर्वोत्तम आदर्श असंभव है?

उत्तर–सर्वोत्तम का ऑकलन वर्तमान में हो सकता है भविष्य का नहीं। वर्तमान में भी किसी कार्य को अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार ही सर्वोत्तम कहा जा सकता है। किसी आदर्श या सिद्धांत के आधार पर नहीं।

प्रश्न–3 क्या बुद्धि प्रधान और भावना प्रधान के बीच कोई व्यक्ति नहीं हो सकता है।

उत्तर–इन दोनो के बीच जो व्यक्ति होता है उसे समझदार कहते है। ऐसे व्यक्ति बहुत कम मिलते है और इनकी संख्या घटती जा रही है। इनकी संख्या बढे इसी उददेश्य से ज्ञान यज्ञ और मंथन कार्यक्रम आगे बढाये जा रहे है।

प्रश्न–4 क्या वर्ण व्यवस्था में मार्गदर्शक कोई अन्य कार्य नहीं करते थे।

उत्तर–मार्गदर्शक अर्थात ब्राहमण मार्गदर्शन के अतिरिक्त कोई काम नहीं करते थे।

प्रश्न–5 आप अपने कथन को और स्पष्ट करिये।

उत्तर–वर्तमान समय में हम पूरी दुनियां में देख रहे है कि जो चरित्रवान लोग है वे निरंतर कमजोर हो रहे है और व्यावहारिक लोग आदर्श को त्याग कर प्रगति कर रहे है। भौतिक उन्नति तेज गति से हो रही है और उतनी तेज गति से नैतिक पतन भी हो रहा है। स्पष्ट है कि नैतिकता कमजोर हो रही है जिसका अर्थ है कि आदर्शवादी लोग असफल हो रहे है।

प्रश्न–6 क्या वर्ण व्यवस्था को फिर से लागू करना संभव नहीं है।

उत्तर–वर्ण व्यवस्था को उसका नाम बदलकर नये तरीके से लागू किया जा सकता है। इसके लिये सबसे पहले प्रत्येक व्यक्ति को आदर्श और व्यवहार के बीच संतुलन बनाने की ट्रेनिंग आवश्यक है।

प्रश्न–7 क्या .उच्च चरित्रवान होना अच्छा नहीं है।

उत्तर–आप अपनी परिस्थिति का ऑकलन करके अपनी चरित्र की सीमा बना सकते है किन्तु आप अपने चरित्र के हिसाब से दूसरे की सीमा निर्धारित नहीं कर सकते। वर्तमान समय में चरित्रवान लोग दूसरों का ऑकलन करके उनकी आलोचना करते है जो घातक है।

प्रश्न–8 हम यदि अपनी योजना की बार बार समीक्षा और बदलाव करेंगे तो अव्यवस्था हो जायेगी।

उत्तर– मैं आपसे सहमत हूँ कोई योजना बनाकर उसकी समीक्षा तो करनी चाहिये किन्तु बदलाव बहुत सोचसमझकर ही करे बार बार बदलाव करना भी अच्छी बात नही ं है।

प्रश्न–9 क्या आप अपने प्रयत्नों को असफल मानते है?

उत्तर–यदि स्थानीय स्तर पर देखा जाये तो प्रयत्न बहुत सफल है किन्तु यदि विश्व स्तर पर ऑकलन किया जाये तो पूरी तरह असफल है। इसी तरह अल्पकालिक रूप से प्रयत्न सफल है व दीर्घकालिक रूप से असफल है।

प्रश्न–10 आपसे कहा भूल हुयी जिसके कारण प्रयत्न सफल नहीं हुये।

उत्तर–मैं जब तक ज्ञान यज्ञ तक सीमित था तब तक अच्छी स्वतंत्रता थी किन्तु जब मैं समाज सुधार के प्रयत्नों को जोड लिया तब सफलता कमजोर हुयी। जब मैं राजनीति से जुडा तब और अधिक नुकसान हुआ। मुझे ज्ञान यज्ञ तक सीमित रहना चाहिये था। अब मैंने अपने को वही तक सीमित किया है।

प्रश्न–11 इसके लिये क्या किया जा सकता है?

उत्तर–सबसे पहले अपनी आदत को सुधार करना चाहिये दूसरों की व्यक्तिगत आलोचना से बचना चाहिये स्वयं भी उच्च आदर्शवादी अव्यावहारिक मार्ग छोड देना चाहिये।

प्रश्न–12 क्या आप दूसरो को सलाह नहीं देते है?

उत्तर–बिना मांगे किसी व्यक्ति को सलाह नहीं देता। बिना आवश्यकता के किसी के कार्यो की व्यक्तिगत आलोचना नहीं कर सकता। बहती हुयी नदी के समान अपने विचार सार्वजनिक रूप से प्रस्तुत करता हूँ। आवश्यकतानुसार कोई भी उपयोग कर सकता है। अन्यथा नदी बहती हुई समुद्र तक चली जाती है।

प्रश्न–13 इस आधार पर आपके क्या कार्यक्रम चल रहे है?

उत्तर–वर्तमान में जून महीने में करीब साठ स्थानों पर समाज की वर्तमान समस्याएं और समाधान विषय पर प्रवचन प्रश्नोत्तर तथा भविष्य की योजना पर कार्यक्रम होगे। 31 अगस्त से 15 सितम्बर तक ऋषिकेश में तीस विषयों पर ''ज्ञान उत्सव'' आयोजित है जो एक प्रकार का नये तरह का वैचारिक कुंभ होगा। इसमें विचारक बैठकर अलग अलग विषयों पर विचार मंथन करेंगे तथा सामान्य लोग उस मंथन का विचार प्रसाद ग्रहण करेंगे। यह पहला प्रयास होगा और आगे की योजना बनेगी।

मंथन क्रमांक 128 ''कट्टरवाद, उग्रवाद और आतंकवाद

स्वतंत्रता और सहजीवन का संतुलन प्रत्येक व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है। आमतौर पर ऐसा संतुलन बन नहीं पाता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी संगठन से जुड जाता है और उसकी प्राथमिकताएं बदलती रहती है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति को सहजीवन अवश्य सीखना चाहिये। परिवार व्यवस्था स्वतंत्रता और सहजीवन के संतुलन सिखाने का सबसे अच्छा आधार है। किन्तु परिवार व्यवस्था कमजोर हो रही है और तालमेल टूट रहा है। यही कारण है कि पूरी दुनियां के प्रत्येक व्यक्ति में धीरे धीरे कट्टरवाद बढ रहा है। वर्ण व्यवस्था का कमजोर होना भी इसका एक मुख्य कारण है।

अबतक पूरी दुनियां में आतंकवाद की कोई साफ परिभाषा नहीं बन सकी है। संयुक्त राष्ट्र भी ऐसी परिभाषा बनाने के लिये प्रयत्नशील है। कट्टरवाद, उग्रवाद तथा आतंकवाद एक दूसरे साथ जुडे हुये शब्द है इसलिये विषय कठिन होते हुये भी इस पर चर्चा आवश्यक है, विशेष रूप से वर्तमान स्थिति में जब सारी दुनियां उग्रवाद और आतंकवाद से परेशान होकर उसका कोई न कोई समाधान करने का प्रयास कर रही है।

व्यक्ति से लेकर संपूर्ण समाज तक व्यवस्था की अनेक इकाई होती है। व्यक्ति से लेकर समाज तक के बीच की इकाईयां अंतिम इकाई नहीं होती। किन्तु जब कोई व्यक्ति बीच की किसी इकाई को अंतिम इकाई मानकर उपर की अन्य इकाईयों का अस्तित्व अस्वीकार कर देता है तब उस व्यक्ति के स्वभाव में कट्टरता शुरू हो जाती है। इस कट्टरता के कारण उस व्यक्ति का सहजीवन सीमित हो जाता है। इसका अर्थ होगा कि वह व्यक्ति अपनी इकाई को अंतिम मानकर उसके साथ अच्छा तालमेल करता है तथा समाज की दूसरी इकाईयों के साथ सामन्जस्य नहीं बिठा पाता है। ऐसी कट्टरता जब दूसरी इकाईयों से टकराव का कारण बनती है तब व्यक्ति के स्वभाव में कट्टरवाद उग्रवाद में बदल जाता है

और जब ऐसा उग्रवाद सामूहिक हिंसा का रूप ले ले तब व्यक्ति को आतंकवादी मान लिया जाता है। कट्टरवाद सिर्फ विचारों तक सीमित होता है, उग्रवाद कभी कभी हिंसा का रूप ले लेता है और आंतकवाद स्थायी रूप से सामूहिक हिंसा के रूप में बदल जाता है। वैसे तो कट्टरवाद कई आधार पर आता है और उग्रवाद तथा आतंकवाद में बदलता रहता है किन्तु वर्तमान विश्व में धार्मिक और राष्ट्रीय आधार पर बढने वाला आतंकवाद ज्यादा खतरनाक हो चुका है। इसकी गति लगातार बढती ही जा रही है और इसका कोई समाधान नहीं दिख रहा है। दुनियां में दो प्रकार के लोग है, बुद्धिजीवी और भावना प्रधान। बुद्धिजीवी लोग आतंकवाद को संचालित करते हुये भी अप्रत्यक्ष रहते है और भावना प्रधान लोग ऐसे बुद्धिजीवियों से प्रभावित होकर आतंकवाद को कार्यान्वित करते है। बुद्धि प्रधान लोग सुरक्षित रहते है और भावना प्रधान लोग सक्रिय होने के कारण प्रत्यक्ष परिणाम भुगतते है। इन दोनो को यह अप्रत्यक्ष गठजोड उग्रवाद और आतंकवाद की रोकथाम में बडी बाधा है क्योंकि बुद्धिजीवी लोग प्रत्यक्ष दिखते नहीं और सारी बागडोर उन्हीं के हाथ में रहती है। किसी समस्या की जड तक पहुँचे बिना पत्तों तक सीमित रहकर समाधान नहीं होता। इसी तरह क्रिया और प्रतिक्रिया के बीच भी बहुत अंतर होता है। इन दोनो को अलग अलग ना समझने के कारण भी समाधान खोजना कठिन होता है। कोई व्यक्ति स्वतंत्रता संघर्ष में लगा है या आतंकवाद में यह अंतर करना भी कठिन होता है।

हम वर्तमान भारत की समीक्षा करे तो धर्म के नाम पर भारत में लगभग नब्बे प्रतिशत मुसलमान धार्मिक कट्टरवाद से प्रभावित है। उन्हें बचपन से ही कुछ इस प्रकार की संगठनात्मक शिक्षा दी जाती है कि वे अपने धार्मिक संगठन को ही समाज से उपर मानना शुरू कर देते है। इतना ही नहीं वे दुनियां को इस्लाम में बदलने को अपना पहला लक्ष्य मान लेते है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ये निरंतर सक्रिय रहते है और इन्हीं कट्टरवादी मुसलमानों में से बडी संख्या मे लोग उग्रवादी हो जाते है जो हिंसा पर विश्वास करते है। ऐसे लोग भारत की लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था की अपेक्षा अपनी धार्मिक संगठनात्मक व्यवस्था को अधिक महत्व देते है। ऐसे ही उग्रवादी मुसलमानों में से कुछ अति भावना प्रधान लोग आतंकवाद की तरफ चले जाते है। आमतौर पर मुसलमानों की आर्थिक स्थिति कमजोर होती है और उनमें साहस बहुत अधिक होता है इसलिये कुछ लोग रोजगार के आधार पर भी आतंकवाद की तरफ बढ जाते है। इस प्रकार के इस्लामिक प्रयत्नों के खिलाफ कुछ कट्टरवादी हिन्दुओं में प्रतिक्रिया होती है। ऐसी प्रतिक्रिया संघ, विश्व हिन्दू परिषद्, बजरंग दल, शिवसेना आदि के नाम पर संगठित हो जाती है और लोग उग्रवाद की दिशा में बढ जाते है। ऐसे ही उग्रवादियों मे से कुछ लोगो ने पिछले पांच दस वर्षो में आतंकवाद की दिशा में बढने का प्रयास किया किन्तु प्रारंभ में ही प्रशासनिक झटका खाने के कारण हिन्दू आतंकवाद आगे नहीं बढ सका। इसका एक कारण यह है कि आमतौर पर हिन्दू कट्टरवादी नही होता बल्कि यदि कायरता और कट्टरता में से एक का चुनाव करना हो तो वह मुसलमानों के ठीक विपरीत कट्टरता की जगह कायरता को चुनना अधिक पसंद करता है। मैं मानता हूँ कि कट्टरता और कायरता के बीच क्या उचित है यह कहना वर्तमान में कठिन है किन्तु हिन्दू और मुसलमान के बीच यह कायरता और कट्टरता का अंतर साफ देखा जा सकता है। स्पष्ट है कि भारत में धार्मिक आतंकवाद की जो भी घटनाएं होती है उनमें लगभग सबमें मुसलमानों का ही अधिक हाथ पाया जाता है। संघ परिवार के लोग कट्टरवाद तक सीमित है और आशिंक रूप से उग्रवाद के तरफ भी चले जाते है किन्तु आतंकवाद की दिशा में नहीं बढ पाते। मैंने स्वयं देखा है कि संघ परिवार के लोग हिंसा प्रोत्साहित तो करते है किन्तु स्वयं उससे दूर रहते है।

राष्ट्रीय आधार पर भी भारत चीन से आयातित साम्यवादी उग्रवाद का निरंतर शिकार रहा है। साम्यवाद पूरी तरह राजनैतिक कट्टरवाद है और लगभग हर साम्यवादी उग्रवादी विचारों का संवाहक माना जाता है। ऐसे ही उग्रवादियों में से कुछ भावना प्रधान लोग नक्सलवाद के चंगुल में फंस जाते है जिन्हें हम आतंकवादी भी कहते है।

कट्टरवाद, उग्रवाद और आतंकवाद में मूलभूत अंतर होता है। कट्टरवाद अपने आंतरिक विचारो तक सीमित होता है। उग्रवाद हिंसक टकराव में बदल जाता है और आतंकवाद एक पक्षीय हिंसा में। एक मूलभूत फर्क और होता है कि उग्रवादी अपने निश्चित लक्ष्य पर आक्रमण करता है तथा असंबद्ध लोगो को मारने में उसकी कोई सक्रियता नहीं होती। आतंकवादी इस बात की परवाह नहीं करता कि मरने वाला कौन है? वह असंबद्ध लोगो को भी मारना कर्तव्य मानता है। ऐसा आंतकवादी चाहे धार्मिक हो या नक्सलवादी किन्तु अधिक से अधिक हत्या करना उसका उददेश्य होता है इसलिये आतंकवाद को वर्तमान समय में सबसे बडी समस्या माना जा रहा है क्योंकि उसमें असंबद्ध लोग ही अधिक मारे जाते है। एक प्रश्न और उठता है कि भगत सिंह ने जो किया उसे किस श्रेणी में माना जाये? मेरे विचार से किसी राजनैतिक संवैधानिक गुलामी से मुक्ति के लिये यदि कोई हथियार उठाता है और वह कट्टरवाद तक सीमित है, उग्रवाद या आतंकवाद तक नहीं। ऐसे प्रयत्नों को आतंकवाद के साथ नहीं जोडा जा सकता है किन्तु यदि कोई लोकतांत्रिक व्यवस्था में गोडसे बनकर गांधी की हत्या कर दे तो वह व्यक्ति अवश्य ही उग्रवादी माना जाना चाहिये। आज भी लोकतांत्रिक भारत में जो लोग भगत सिंह अथवा सुभाष चंद्र बोस के नाम पर हिंसा का समर्थन करते है ऐसे लोग कट्टरवादी तो है ही उनमें से अनेक उग्रवादी भी हो सकते है। इस प्रकार की विचारधारा का किसी भी रूप में समर्थन नहीं किया जा सकता। भले ही वह उग्रवाद के विरूद्ध ही क्यों न हो? हमें लोकतांत्रिक भारत में कानून का सहारा लेना चाहिये और यदि प्रशासन हमारे विरूद्ध है तो ऐसे प्रशासन को बदला जा सकता है किन्तु कानून हाथ में लेकर कट्टरवाद और उग्रवाद की इस्लामिक अवधारणा का अनुकरण नहीं किया जा सकता। मेरा यह स्पष्ट मत है कि आतंकवाद को सिर्फ कुचला ही जा सकता है चाहे वह बुद्धिजीवियों द्वारा कराया जाये अथवा भावना प्रधान लोगो द्वारा किया जाये। आतंकवादियों से बात करने या उनके हृदय परिवर्तन की वकालत करने वाले लोगो का या तो प्रशासनिक या कानून स्तर पर कोई इलाज हो अथवा इनका सामाजिक बहिष्कार किया जाये। पूरी निर्ममता से आतंकवाद को नष्ट करना चाहिये। उग्रवाद को रोकने के लिये कानून के अनुसार भय और दंड का सहारा लिया जा सकता है किन्तु आतंकवाद और उग्रवाद का प्रारंभ कट्टरवाद से होता है यदि कट्टरवाद को ही प्रारंभ में नियंत्रित करने का प्रयास हो तो ''न रहेगा बांस न बजेगी बासुरी''। आतंकवाद को तो सिर्फ सरकार ही कुचल सकती है और उग्रवाद के लिये भी कानून का सहारा लेना पडेगा किन्तु कट्टरवाद को न कोई सरकार रोक सकती है न कानून। कट्टरवाद सिर्फ समाज ही रोक सकता है और समाज की पहली इकाई है परिवार। इसलिये किसी भी रूप में कट्टरवाद को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिये चाहे वह धार्मिक कट्टरवाद हो अथवा राष्ट्रीय। वर्तमान समय में पूरी दुनियां और विशेषकर भारत के लिये आतंकवाद सबसे बडी समस्या

है। इसमें भी मुस्लिम आतंकवाद सबसे उपर है। हमारी राजनैतिक व्यवस्था को इसे प्राथमिक समस्या मानकर और अधिक सक्रिय होना चाहिये जिससे आम शांति प्रिय लोगों का धैर्य टूटने न लगे। अभी न्यूजीलैंड की घटना ऐसे धैर्य टूटने का प्रत्यक्ष उदाहरण है। मानवता और भाईचारा के नाम पर आतंकवाद को कुचलने में किसी भी प्रकार की कमजोरी बडे संकट का रूप धारण कर सकती है। विश्व को भी सतर्क होना चाहिये और भारत को भी। भारत को शरणार्थी समस्या पर मानवता की जगह आतंकवाद नियंत्रण को अधिक प्राथमिकता देनी चाहिये।

सामयिकी

वर्तमान भारत में चौकीदार चोर है और मैं भी चौकीदार की एक नयी लहर आयी हुई है। एक पक्ष चौकीदार को चोर कह रहा है और दूसरा पक्ष चौकीदार शब्द के पक्ष में खडा है। देश का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार से चौकीदार तो होता ही है। कोई अपने परिवार का चौकीदार है कोई देश का चौकीदार है। कोई समाज की चिंता करता है। चिंता तो सब करते है इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी रूप में चौकीदार कहा जा सकता है। ऐसे ही लोगों में से बहुत से लोग चोर भी होते है जो किसी एक क्षेत्र की चौकीदारी करते है तो दूसरे क्षेत्र में चोरी करते है। किसी को भी चोर करने के पहले कई सतर्कताओं का पालन करना चाहिये। किसी चौकीदार की लापरवाही से चोरी हो जाए तो उस चौकीदार को लापरवाह कहा जा सकता है नौकरी से भी निकाला जा सकता है किन्तु चोर नही कहा जा सकता। यदि ऐसे लापरवाह चौकीदार को चोर कहा जायेगा तो ऐसी किया की प्रतिकिया स्वाभाविक है। मुझे लगता है कि भारत में चौकीदार को चोर कहने की जल्दबाजी में यह शब्द अधिक उलझ गया।

मैंने अपनी चौकीदारी पर विचार किया। सच्चाई यह है कि मैं अब परिवार, देश या किसी धर्म विशेष की चौकीदारी से मुक्त होकर अपने को सम्पूर्ण विश्व समाज का चौकीदार मान रहा हूॅं। मेरी इच्छा थी की यह चौकीदार शब्द राजनीति का अखाडा नहीं बनता तो अच्छा था किन्तु जब बन ही गया है तों मैंने भी अपनी चौकीदारी स्पष्ट करना उचित समझा।

उत्तरार्ध

31 अगस्त से 14 सितम्बर तक ऋषिकेश में ज्ञान यज्ञ का 15 दिवसीय ज्ञान यज्ञ ऋषिकेश में सम्पन्न हो रहा है जिसमें प्रतिदिन दो विषयों पर चर्चा होगी तथा साथ में यज्ञ और कुछ प्रवचन के कार्य भी होते रहेगे। यज्ञ के उददेश्य योजना तथा आप सब को आमंत्रण के लिये फेसबुक, व्हाटसअप, पत्राचार, ज्ञान तत्व आदि के माध्यम से आमंत्रण जाता रहेगा किन्तु मुनि जी ने आचार्य पंकज जी के साथ मिलकर इस विषय पर प्रत्यक्ष चर्चा तथा आमंत्रण के लिय करीब 40 दिनों की यात्रा का कार्यक्रम बनाया है। यात्रा की संभावित तिथि व स्थान हम प्रकाशित कर रहे है। इनकी अंतिम सूचना अगले ज्ञान तत्व में जायेगी।

क्र.सं.	दिनॉक	स्थान	क्र.सं.	दिनॉक	स्थान
1	16.06.2019	ऋषिकेश से प्रारंभ	12	01.07.2019	इलाहाबाद, मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश)
2	20.06.2019	सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)	13	04.07.2019	चोपन, वाराणसी, गाजीपुर (उत्तर प्रदेश)
3	21.06.2019	बिजनौर, नोएडा (उत्तर प्रदेश)	14	05.07.2019	बक्सर, कुशीनगर (उत्तर प्रदेश)
4	23.06.2019	बुलंदशहर, सम्भल (उत्तर प्रदेश)	15	06.07.2019	बलिया, देवरिया (उत्तर प्रदेश)
5	24.06.2019	बदायूं, काशकंज (उत्तर प्रदेश)	16	07.07.2019	सिवान, छपरा (बिहार)
6	25.06.2019	आगरा (उत्तर प्रदेश)	17	08.07.2019	डेहरी आनसोन, पटना (बिहार)
7	26.06.2019	झांसी, बांदा (उत्तर प्रदेश)	18	09.07.2019	शिवहर, मधुबनी (बिहार)
8	27.06.2019	कानपुर, लखनउ (उत्तर प्रदेश)	19	10.07.2019	खगडिया, लखीसराय (बिहार)
9	28.06.2019	बारांबकी, फैजाबाद (उत्तर प्रदेश)	20	11.07.2019	मुंगेर, बांका (बिहार)
10	29.06.2019	बस्ती, सुल्तानपुर (उत्तर प्रदेश)	21	12.07.2019	देवघर, आसनसोल (झारखंड)

11	30.06.2019	प्रतापगढ़ (उत्तर प्रदेश)	22	13.07.2019	धनबाद, रामगढ (झारखंड)
			23	14.07.2019	रांची (झारखंड)

और आगे की यात्रा के स्थान और कार्यक्रम की सूचना बाद में दी जायेगी।
उपर घोषित तिथि व स्थानों में भी फेरबदल संभव है।